पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार, गाथा ३१, ता. ६-४-१९८९
भिंड, प्रवचन नंबर P११

ज्ञायक आत्मा और जो रागादि विकृतभाव हैं, उसके भेदज्ञान के लिए तो बहुत गाथा आती हैं। बहुत जगह पर ज्ञान भिन्न और राग भिन्न (आया है)। वो पट्टी लगाया था ना, पहले दिन, ज्ञान भिन्न और राग भिन्न, वो एक प्रकार का भेदज्ञान का मंत्र है। इससे ज़रा विशेष सूक्ष्म अतींद्रिय ज्ञानमय भगवान आत्मा और ज्ञेयभूत इंद्रियज्ञान, ज्ञानमय आत्मा और ज्ञेयभूत इंद्रियज्ञान अर्थात् अतींद्रिय ज्ञानमय आत्मा और इन्द्रियज्ञान, उन दो के बीच में भेदज्ञान की गाथायें शास्त्र में भी कम आती हैं। बहुत कम, बहुत कम आती हैं। वैसे तो १५ गाथा में भी आया है, थोड़ा, आविर्भाव-तिरोभाव के रूप में, ३१मीं गाथा में भी है और ४९ गाथा में भी समयसार में है। ऐसे प्रवचनसार में भी इंद्रियज्ञान वो जड़ है, अचेतन है, आकुलता को उत्पन्न करनेवाला है। वह आत्मा का त्रिकालस्वभाव भी नहीं है और क्षणिकस्वभाव भी नहीं है और अलिंगग्रहण की १७२ गाथा में भी प्रथम दो बोल हैं कि ये आत्मा है, वो इंद्रियज्ञान के द्वारा पर को जानता ही नहीं है। पर को जानने के लिए इंद्रियज्ञान साधन नहीं है। वो ही इंद्रियज्ञान आत्मा को जानने के लिए भी साधन नहीं है। इसलिए सचमुच, सम्यक् प्रकार से देखा जाए तो, इंद्रियज्ञान में स्वपरप्रकाशक का अभाव है, तो भी, इंद्रियज्ञान में स्वपरप्रकाशक का प्रतिभास तो होता है।

क्या कहा? जैसे पहले कहा कि शुद्धात्मा और राग भिन्न है, वो बात तो बहुत आती है। मगर हमारे पिताजी फ़रमाते थे कि ज्ञान से ज्ञान का भेदज्ञान करो। ज्ञान से ज्ञान का भेदज्ञान करो, अर्थात् अतींद्रिय ज्ञानमय भगवान आत्मा और भावेन्द्रिय खंडज्ञान, उसका नाम खंडज्ञान है। अखंडज्ञान और खंडज्ञान, दो भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं। सचमुच भावेन्द्रिय खंडज्ञान, वो त्रिकाली शुद्धात्मा ही नहीं है, स्वभाव नहीं है और आत्मा का परिणाम भी नहीं है। जैसे रागादि आत्मा का परिणाम नहीं है, क्योंकि राग आत्मा के आश्रय से नहीं होता है, इसलिए राग भिन्न है। वह राग आत्मा का लक्षण नहीं है इसलिए आत्मा को प्रसिद्ध नहीं करता है, इसलिए राग भिन्न है। और राग आत्मा से कथंचित् अभिन्न भी नहीं होता है, इसलिए राग आत्मा से भिन्न है। ऐसे जो पराश्रित इंद्रियज्ञान प्रगट होता है, वह आत्मा के आश्रय से प्रगट नहीं होता है, इंद्रियज्ञान। अतींद्रियज्ञान तो आत्मा के आश्रय से प्रगट होता है। इंद्रियज्ञान का अवलंबन आत्मा नहीं है। इन्द्रियज्ञान का अवलंबन परपदार्थ है। अंदर में द्रव्येंद्रिय है और बाहर में नोकर्म है, इसलिए इंद्रियज्ञान आत्मा के आश्रय से नहीं होता है। इसलिए इंद्रियज्ञान आत्मा का परिणाम नहीं है। और इंद्रियज्ञान आत्मा को प्रसिद्ध नहीं करता है, इसलिए भी वह आत्मा का परिणाम नहीं है। और इंद्रियज्ञान आत्मा से अनन्य नहीं होता है, इसलिए भी वो इंद्रियज्ञान आत्मा का परिणाम नहीं है।

ऐसे सूक्ष्म भेदज्ञान की बात.....अभी तो गुरुदेव का वियोग हो गया। उन्होंने तो सब बात बता दिया है। उनका बताया हुआ जो तत्त्व (है), हम उसको बार-बार घूँटते हैं, चिंतवन करते हैं। जो उनका

अनंत, अपने ऊपर उनका उपकार है। सज्जन उपकार को भूलता नहीं है। आहाहा!

तो अतींद्रिय ज्ञानमय भगवान आत्मा से इंद्रियज्ञान, शास्त्रज्ञान भिन्न है। डॉक्टर कहाँ गया? बैठा है कि नहीं? आया नहीं? यह वकालत का ज्ञान, डॉक्टर का ज्ञान, इंजीनियर का ज्ञान, ओहो! वो तो दूर रहो, वो तो दूर रहो, वो तो कुमति-कुश्रुत है। मगर शास्त्र के लक्ष्य से हुआ इंद्रियज्ञान, जो आत्मा को तिरोभूत करके प्रगट होता है, वह भी कुमति और कुश्रुत है। जो ज्ञान जिसका है, उसको प्रगट न करे और जो ज्ञान जिसका नहीं है, उसको प्रसिद्ध करे, तो ज्ञान नहीं है, अज्ञान है। आहाहा!

तो अतींद्रिय ज्ञानमय भगवान आत्मा और ज्ञेयभूत इंद्रियज्ञान, उन दोनों के बीच में भेदज्ञान की यह गाथा आई है। जैसे रागादि, भावक का भाव है, ज्ञायक का भाव (नहीं)। व्यवहार रत्नत्रय का परिणाम, वह ज्ञायक का भाव नहीं है। जाति जुदी है। वह भावक का भाव है। भावक यानि जो कर्म है, द्रव्यकर्म, वह भावक है। उसके संबंध से उत्पन्न होनेवाला भाव, उसका स्वामी, भावक यानि पुद्गल उसका स्वामी है। आत्मा चैतन्यमूर्ति जड़ का स्वामी होता नहीं है। स्व-स्वामी संबंध राग के साथ आत्मा को नहीं है। आहाहा! वह भावक का भाव है।

ऐसे इंद्रियज्ञान, पाँच इंद्रिय और छठवाँ मन, भावेन्द्रिय, वो ज्ञेय का भाव है, ज्ञायक का भाव नहीं है। ज्ञेय का भाव कहा, कहना पड़ा, मगर सचमुच (तो वो) अपने आप ही ज्ञेय है। वो ध्येय तो नहीं है, मगर सचमुच ज्ञेय भी नहीं है। ध्येय तो ध्रुव परमात्मा है और ज्ञेय, भेद अपेक्षा से निश्चय मोक्षमार्ग है, अभेद अपेक्षा से तो आत्मा ही ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय है और इंद्रियज्ञान तो पराया भाव है। जैसे राग पराया भाव है, ऐसे इंद्रियज्ञान पराया भाव है, स्वभाव, स्वभाव भाव नहीं है। तो जहाँ तक इंद्रियज्ञान जिंदा रहता है, जीवित रहता है अर्थात् इंद्रियज्ञान को जीव ज्ञान मानता है, तहाँ (वहाँ) तक मोह का क्षय नहीं होता। मिथ्यात्व का नाश नहीं होता। यह छुपा चोर है।

जैसे मुंबई में पहले तो सुना था कि ऊंदर (चूहा) बहुत होता था, ऊंदर, चूहा, चूहा। तो रात को सब सो जावे ना, तो वो चूहा उसको फूँक-फूँककर खाता है। फूँक लगावे, फूँक समझे? बाद में काटे, तो वो जागे ही नहीं। आहाहा!....काट जाए, फजल में उठे, यह क्या हो गया पैर में? तो चूहा काटा, मगर खबर पड़ी नहीं है। समझे? ऐसे इंद्रियज्ञान भगवान आत्मा को तिरोभूत करके प्रगट होता है। वह दुश्मन है, मित्र नहीं है। आहाहा! दुश्मन को मित्र मान लेना बहुत धोखे की बात है। राग को तो दुश्मन मानते हैं क्योंकि राग आकुलता को उत्पन्न करनेवाला है और कर्मबंध का कारण है और कषाय भी है उसका नाम, कषाय तीव्र और मंद। मगर यह जो, भावेन्द्रिय खंडज्ञान है, छुपा घर का चोर है, अंदर में घुस गया है और मोहराजा ने उसका नाम ज्ञान रखा (है)। मोहराजा ने उसका नाम ज्ञान रखा और सर्वज्ञ भगवान ने उसका नाम ज्ञेय रखा। ज्ञान नहीं है, मगर ज्ञेय है। जो जिसको ख्याल में आ जावे कि वह ज्ञान नहीं है, नाम-निक्षेप से ज्ञान है, भाव-निक्षेप से तो ज्ञेय ही है। हेयरूप ज्ञेय है। आहाहा!

ऐसी अद्भुत बात आचार्य भगवान, भेदज्ञान की.....अतींद्रिय ज्ञानमय प्रभु, विभु, भगवान आत्मा अंदर विराजमान है और इंद्रियज्ञान के संबंध से उत्पन्न होनेवाला जो भावेन्द्रिय खंडज्ञान, वह आत्मा का परिणाम भी सचमुच नहीं है। द्रव्यसंग्रह में तो, बृहदद्रव्यसंग्रह में तो ऐसा आता है कि जैसे रागादि भावकर्म हैं, असद्भूत व्यवहारनय का विषय, ऐसे इंद्रियज्ञान भी भावकर्म है। वो कर्म की जाति है,

ज्ञान-चेतना की जाति नहीं है। कर्मधारा है, यह ज्ञानधारा नहीं है। आहाहा! जैसे राग कर्मधारा, ऐसे इंद्रियज्ञान भी कर्मधारा। भावकर्म में गया वो। भावकर्म है, आत्मा का कर्म नहीं है। आहाहा! ऐसे। हें? विपरीत है। ऐसे अपूर्व बात ये ३१वीं गाथा में आचार्य भगवान हमको समझाते हैं। हम सब समझने की कोशिश करें, तो अपना हित हो जाए।

टीका:- अनादि अमर्यादरूप अनादि, अनादि, अनादिकाल गया। आहाहा! अनंत, अनंतकाल बीते भूतकाल में। लुहाड़िया जी आ गये? अच्छा। अनंत, अनंतकाल बीते भूतकाल में, आहाहा! **अनादि अमर्यादरूप** उसकी मर्यादा (नहीं है)। उसकी सादि नहीं, अनादि से है, मगर अंत होवे ऐसा धर्म है उसका। अनादि-अनंत नहीं है क्योंकि विभाव है। विभाव अनादि से होने पर भी अनादि-शांत होता है। अनादि-अनंत नहीं होता है। तो **अनादि अमर्यादरुप बन्धपर्यायके वश** यानि इंद्रियज्ञान को ज्ञान मानना, आहाहा! वो अज्ञान है।

इंद्रियज्ञान को ज्ञान मानना, वह अज्ञान है। आहाहा! क्योंकि वह ज्ञान है ही नहीं, वो तो ज्ञेय है, ज्ञान नहीं है। **अमर्यादरुप बन्धपर्यायके वश** उपादेय मान लिया, थोड़ा शास्त्र का ज्ञान आ गया, अहम् हो जाता है। आहाहा! जैसे कषाय की मंदता से अहम् आता है, सबको नहीं, कोई-कोई को। सबकी बात नहीं है। समझे? कषाय की मंदता में भी अहम् आ जाता है, तो जीव को सम्यग्दर्शन होता नहीं है, क्योंकि उससे मेरा मोक्ष हो जाएगा ऐसा मानता है, मिथ्यात्व पुष्ट हो जाता है।

ऐसे शास्त्र का ज्ञान, उघाड़ हो गया, थोड़ा न्याय, व्याकरण, संस्कृत पढ़ लिया, आहाहा! गाथा ५, ५०, १००, २००, ५०० मुखपाठ हो गईं, आहाहा! तो फ़रमाते हैं कि भैया! तू इससे ठगा गया है। छेतराणो छुं क्या? ठगा गया है। वो तेरा स्वरूप नहीं है। **बन्धपर्यायके वश** यानि भाव-बंध के वश यानि इन्द्रियज्ञान (को) उपादेय माना, उसका नाम भाव-बंध है। शुद्धात्मा उपादेय होने के बाद इंद्रियज्ञान हो, तो-तो वो भिन्न जानते हैं। अंतर्मुख होकर अतींद्रियज्ञान के द्वारा शुद्धात्मा को जाना और इंद्रियज्ञान भी रहा, इंद्रियज्ञान भी (रहा)। आहाहा! मगर निर्जीव हो गया वो, उसमें जीवन, प्राण नहीं रहा। वो तो मुर्दा हो गया। आहाहा!

अभिप्राय का सहयोग खिसक गया उसमें से। अभिप्राय का दोष था ना। अभिप्राय का दोष, श्रद्धा का दोष बड़ा दोष है। राग होने पर भी अभिप्राय सही हो जाता है। राग मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो चिदानंद आत्मा हूँ, ऐसे भेदज्ञान करने के बाद भी राग तो थोड़े काल आता भी है, मगर अपना स्वभाव जानता नहीं है। ऐसे एक दफ़े अतींद्रिय ज्ञानमय भगवान आत्मा और इंद्रियज्ञान, उसके बीच में प्रज्ञाछैनी डाले.... प्रज्ञा यानि अतींद्रियज्ञान एक नया प्रगट होता है, वो जात्यान्तर ज्ञान है। अनादिकाल से प्रगट हुआ नहीं, अनादि मिथ्यादृष्टि के लिए यह बात है, सादि मिथ्यादृष्टि की बात तो (है नहीं)।

अनादि मिथ्यादृष्टि, अनादि लिया ना। आहाहा! अनादि मिथ्यादृष्टि जीव की बात चलती है कि भेदज्ञान करके अनुभव किया और इंद्रियज्ञान और अतींद्रियज्ञान को जुदा जान लिया, जुदा अनुभव कर लिया। अनुभव करने के बाद सविकल्पदशा आती है और शास्त्र तरफ लक्ष्य जाता है। आहाहा! आत्मा का लक्ष्य नहीं जाता है (शास्त्र पर), इंद्रियज्ञान का लक्ष्य जाता है। शास्त्र का लक्ष्य करनेवाला आत्मा नहीं है। आत्मा तो आत्मा का लक्ष्य करनेवाला है। जो आत्मा का लक्ष्य करे, वो परिणाम आत्मा

का है, जो शास्त्र का लक्ष्य करे, वह परिणाम आत्मा का (नहीं है)। आहाहा! ऐसे भेदज्ञान हो जाता है, इंद्रियज्ञान भी रह जाता है, शास्त्रज्ञान भी रह जाता है। जैसे राग रहता है, ऐसे इंद्रियज्ञान भी रह जाता है क्योंकि जहाँ तक केवलज्ञान नहीं हो, तहाँ तक (इंद्रियज्ञान है)। आहाहा!

एक समय की ज्ञान की पर्याय, पर्याय एक, समय एक, इसका दो भाग पड़ जाता है। स्वाश्रित में अतींद्रियज्ञान और परावलंबी इंद्रियज्ञान। समय एक, पर्याय एक, एक पर्याय का दो भाग पड़ता है। तो भले इंद्रियज्ञान रहे, ज्ञान का ज्ञेयरूप भले रहे, मगर यह मेरा भाव (नहीं है)। जैसे राग मेरा स्वभाव भाव नहीं है। आहाहा! बँटवारा हो गया, क्या कहा? जैसे दो भागीदार हों, जहाँ तक बँटवारा न हो, तहाँ तक चिंता रहती है। क्या होगा? क्या होगा? समझे? हाँ! बँटवारा। आहाहा! स्टैम्प के कागज़ पर बँटवारा हो गया। आहाहा! कि राग भिन्न और आत्मा भिन्न। ऐसे इंद्रियज्ञान भिन्न और अतींद्रियज्ञानमय प्रभु, विभु, भगवान आत्मा भिन्न है। ऐसा अतींद्रियज्ञान के द्वारा, अतींद्रियज्ञान छैनी है, प्रज्ञाछैनी। वो इंद्रियज्ञान और अतींद्रियज्ञान से जुदा पाड़ती है। आहाहा! तो (जुदा) पाड़ने के बाद, इंद्रियज्ञान तो रहता है थोड़े टाइम, केवलज्ञान न हो तहाँ तक। ऐसे राग, यथाख्यात चारित्र न हो, तहाँ तक रहता है। आहाहा! वो सम्यग्दर्शन में बाधक नहीं है, सम्यग्दर्शन में बाधक नहीं है। ज्ञान, केवलज्ञान में बाधक है। इंद्रियज्ञान केवलज्ञान में बाधक है और राग यथाख्यात चारित्र में (बाधक है)। है तो बाधक ही, दोनों हैं तो बाधक, साधक नहीं हैं।

क्या कहा? अनुभव के बाद इंद्रियज्ञान रहता है, थोड़े टाइम के लिए। उसका आयुष्य तो अभी अल्प रहा है, पर (लेकिन) रहा है। जहाँ तक केवलज्ञान न हो, तहाँ तक वो केवलज्ञान में बाधक तत्त्व है। ऐसे थोड़ा राग अल्प रहता है, अस्थिरता का, साधक को भी। आहाहा! वो राग यथाख्यात चारित्र में बाधक है, मगर सम्यग्दर्शन में बाधक होता (नहीं है)। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन, वो (उसको) कोई बाधक नहीं है। जो विपरीत दृष्टि आवे, तो बाधक है। अविपरीत दृष्टि रहती है, तो बाधक (नहीं है)। आहाहा! सम्यग्दर्शन में बाधक नहीं है। इंद्रियज्ञान और राग, राग और इंद्रियज्ञान का जो प्रेम आ जावे, अधिकता आ जावे तो बाधक हो जाता है, तो सम्यग्दर्शन टिकता नहीं है। शुद्धनय ग्रहण करे (तो) मोक्ष, तजे (तो) बंध है। आहाहा!

ऐसे **अनादि अमर्यादरूप बन्धपर्यायके वश जिसमें समस्त स्व-परका विभाग अस्त हो गया है**। "मैं अतींद्रियज्ञानमय भगवानआत्मा हूँ" और "ये इंद्रियज्ञान वो मेरा है" वो दो के बीच में भिन्नता होने पर भी, उसका विभाग अस्त हो गया है। इंद्रियज्ञान की अधिकता से, प्रेम से, उपादेयबुद्धि से, कर्ता का कर्म मानने से, कर्ता का कर्म नहीं है, वो तो ज्ञान का ज्ञेय है। मगर कर्ता का कर्म मानता है, तो भेदज्ञान अस्त हो जाता है। है तो भिन्न-भिन्न, अतींद्रिय ज्ञानमय भगवान आत्मा और इंद्रियज्ञान खंडज्ञान, अखंड और खंड भिन्न-भिन्न ही हैं। अखंड, खंड में नहीं आता और खंड, अखंड में नहीं आता है। आहाहा!

तो **जिसमें समस्त स्व-परका विभाग** यानि जुदाई, **विभाग** यानि जुदाई **अस्त हो गया है,** दिखाई नहीं देता है। इंद्रियज्ञान का, शास्त्रज्ञान का प्रेम अहम् हो गया, ज्ञान का मद हो जाता है। मद का प्रकार है ना। आहाहा! हें? ज्ञानमद है भैया! कषाय की मंदतावाला तो कभी बच जाता है, कोई

ज्ञानी मिले तो कि भाई! ये तेरा स्वभाव (नहीं है)। मगर, आहाहा! पंडित हो गया, "मैं जानता हूँ" (ऐसा मानता है), वह मर जाता है। भाई! हमारे पास पहले नहीं (था), अभी तो ज्ञान बहुत बढ़ गया है। अरे! ज्ञान का उत्पाद ही नहीं हुआ तो बढ़ता कहाँ से है? बढ़ने की बात कहाँ आई? तू क्या बोलता है? क्या बकता है तू? अतींद्रियज्ञान जब प्रगट होता है, वो बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञान होता है, वो तो बराबर है। मगर इंद्रियज्ञान वो ज्ञान ही नहीं है। आहाहा! वो उत्पन्न ही नहीं हुआ, तो बढ़ने की बात (कहाँ से आई)? आहाहा! जैसे लक्ष्मी का ढेर हो गया, अभिमान हो जाता है। ऐसे ज्ञेय का ढेर हो गया. ज्ञान का नहीं ज्ञेय का ढेर हो गया। उसमें अभिमान करके ये भव हार जाता है। आहाहा! मनुष्य भव (हार जाता है), परिग्रह है। आहाहा! इंद्रियज्ञान परिग्रह है। आहाहा। मूर्छा परिग्रहः मूर्छा (परिग्रहः)। ये इन्द्रियज्ञान मेरा है, मूर्छित हो गया, वो परिग्रह है। उसने इंद्रियज्ञान को पकड़ लिया और भगवान आत्मा को छोड़ दिया। अपमान कर दिया आत्मा का।

ऐसे **स्व-परका विभाग अस्त हो गया है**। अनादि से अस्त तो विभाग हो गया है, मगर भेदज्ञान से आत्मा का उदय होता है। (**अर्थात् जो आत्माके साथ ऐसी एकमेक हो रही है कि भेद दिखाई नहीं देता)**। द्रव्येंद्रिय की बात पहले करते हैं। पहले बात द्रव्येंद्रिय (की)। द्रव्येंद्रिय और आत्मा एकमेक जैसा लगता है, भेद अस्त हो गया है। द्रव्येंद्रिय, ये स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द, छठवाँ मन, ऐसे जो द्रव्येंद्रिय पुद्गल की रचना है, वो चेतन की रचना, ये नहीं है। प्योर (pure) पुद्गल है, प्योर। समझे ना? कोई मिलावट (नहीं), थोड़ा चेतन और थोड़ा जड़, मिश्र हुआ, ऐसा नहीं है। ये द्रव्येंद्रिय जड़ है, जड़ परमाणु से बना हुआ पिंड है। वो दो के बीच में भेदज्ञान नहीं है, तो अस्त हो गया है। द्रव्येंद्रिय भिन्न और आत्मा भिन्न, मालूम नहीं होता है। तो **अर्थात् जो आत्माके साथ ऐसी एकमेक हो रही है** यानि भ्राँति हो रही है। एकमेक हो रही नहीं है, एकमेक जैसी लगती है, वह तो भ्राँति है। जड़-चेतन एक होता नहीं है **कि भेद दिखाई नहीं देता।** जुदाई होने पर भी उसकी जुदाई मालूम नहीं होती है क्योंकि कान हो तो सुन सकते हैं, आँख हो तो देख सकते हैं। अच्छा! जो आँख न हो और कान न हो तो कोई देख सके नहीं, जान सके नहीं। तो सिद्ध भगवान के पास तो द्रव्येंद्रिय है ही नहीं, तो क्या वे जानते नहीं हैं? आहाहा! ये जानने का साधन ही नहीं है। इंद्रियज्ञान पर को जानने के लिए साधन नहीं है। स्व और पर को जानने के लिए अतींद्रियज्ञान साधन है। तो-तो सब व्यवहार का लोप हो जाएगा। व्यवहार का पक्ष चले जाएगा और व्यवहार आ जाएगा। घबराना नहीं, घबराने की बात नहीं है। आहाहा!

समस्त ऐसे भेद दिखाई नहीं देता, **ऐसी शरीरपरिणामको प्राप्त।** ये अव्यवी है ना, सारा शरीर, उसका एक अव्यव है, भाग है। आँख है ना ये स्पेयर पार्ट (spare part) है। जैसे मोटर है, उसका स्पेयरपार्ट जुदा-जुदा होता है ना। ऐसे अव्यवी पदार्थ है, सारा शरीर। उसका एक अव्यव, अव्यव है। तो एक भाग है। जैसे स्पर्शइंद्रिय, रसइंद्रिय, द्रव्येंद्रिय, अभी द्रव्येंद्रिय की बात, घ्राणइन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय और ये श्रोतइन्द्रिय। ये पाँच द्रव्येंद्रियाँ हैं और छठवाँ मन, इधर। वो (मन) मनोवर्गणा से बना हुआ है। ऑपरेशन से भी दिखाई देता (नहीं है)। ऐसा सूक्ष्म है! आहाहा! विचार इधर से (जहाँ मन है, वहाँ से) चलता है। इधर से (ऊपर से) नहीं चलता है। मानसिक जो विचार उत्पन्न होता है, उसका

निमित्त का स्थान यहाँ (मन) है। निमित्त का स्थान इधर (मगज नहीं है)। मगज में ऐसा आया, मगज में से विचार आया, मगज में से विचार आया। आहाहा! वो निमित्तरूप है। द्रव्येंद्रिय निमित्तरूप है। मगर जहाँ तक वो निमित्त देखता है, तहाँ तक अज्ञानी है। उसको ज्ञेय देखे, तो अज्ञान टल जाता है।

क्या कहा? ये जगत में कोई निमित्त नहीं है। जगत में सब ज्ञेय (ही) हैं। दृष्टांत तो दिया था आठकर्म निमित्त नहीं हैं। बोलो! दृष्टांत नहीं दिया था? हें? आहाहा! सोनगढ़ का संत तो सबको ज्ञेय, ज्ञेयरूप से जानता है, निमित्तरूप से जानता नहीं है। अरे! निमित्त (को) नहीं माने तो संसार का अभाव हो जाएगा। हमको इष्ट है। वो तो इष्ट है इसलिए तो समयसार की रचना है। (और) कि ये चारगति की सिद्धि करने के लिए, पुष्टि करने के लिए ये समयसार की रचना नहीं है। आहाहा!

ऐसी शरीरपरिणामको प्राप्त द्रव्येन्द्रियोंको तो जो जड़-इंद्रिय, द्रव्येंद्रिय है, उसको तो, भेदज्ञान की बात चलती है। ज्ञायक प्रभु आत्मा और द्रव्येंद्रिय। द्रव्येंद्रिय है, द्रव्येंद्रिय का अस्तित्व है। नहीं है, ऐसा उसको काटकर अलोक में नहीं भेजना है। उसको उसके स्थान पर रहने दो। अपने को कोई अड़चन है नहीं। मगर ये कान मेरा है, वो अज्ञानी हो गया। आहाहा! आत्मा को कान नहीं होता है, आत्मा को द्रव्यचक्षु होता नहीं है। आहाहा! आत्मा को कान होवे तो कान से सुने, मगर कान है नहीं। नाक भी नहीं है, नाक से सूँघता नहीं है पदार्थ। ये जीभ नहीं है आत्मा को, तो रस चखता नहीं है। अभी ४९ गाथा के अनुसंधान में लेना है, द्रव्येंद्रिय जीतने के लिये।

द्रव्येन्द्रियोंको तो निर्मल भेदाभ्यासकी प्रवीणतासे यानि द्रव्येंद्रिय भिन्न है और उसको जाननेवाला भावेन्द्रिय भी भिन्न है। उसके अलावा में त्रिकाल, त्रिकाल ज्ञानानंद परमात्मा हूँ, ऐसे निर्मल जुदाई करने के प्रयोग से **भेदाभ्यासकी प्रवीणतासे प्राप्त अन्तरङ्गमें प्रगट अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभावके**, आहाहा! अंदर भगवान प्रभु, विभु, प्रगट है और प्रगट अतिसूक्ष्म। संवर, निर्जरा और मोक्ष तो सूक्ष्म है, मगर ज्ञायकदेव अतिसूक्ष्म है। एक-एक शब्द की कीमत है, भावलिंगी संत की। आहाहा!

अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभावके अवलम्बनके बलसे सर्वथा अपनेसे अलग किया; सर्वथा, कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न, ऐसा है नहीं। सर्वथा भिन्न है। द्रव्येंद्रिय जब अंर्तमुख होकर (के) अपने अतिसूक्ष्म चैतन्य प्रभु का लक्ष्य किया, अवलंबन लिया, तो अवलंबन लेते ही ये मैं हूँ और ये मैं नहीं हूँ, ऐसा भेदज्ञान हो जाता है। एकत्वबुद्धि टूट जाती है। द्रव्येंद्रिय रह जाती है, मगर द्रव्येंद्रिय में अहम् छूट जाता है और जानने का साधन है, ऐसी मिथ्याभ्राँति टल जाती है। जानने का निमित्त कारण तो चाहिए ना। आहाहा!

निमित्ताधीन दृष्टिवाला निमित्त को शोधता है। उपादान की स्वशक्ति को पहचानता नहीं है। आहाहा! आज तक कान से कोई ने देशनालब्धि सुनी ही नहीं है, आहाहा! क्योंकि कान ही नहीं है। कहाँ से सुने? वो तो ज्ञानमय पुंज आत्मा है। इससे भी सूक्ष्म थोड़ा आएगा अभी भावेन्द्रिय में, इससे भी सूक्ष्म। आहाहा! मगर द्रव्येंद्रिय की जुदाई जिसको लगे, उसको, ये भावेन्द्रिय जुदी ही है, ये समझने के लिए उसका मिथ्यात्व गलता है, थोड़े ज्ञान की अंदर निर्मलता आती है तो दूसरे नंबर का भेदज्ञान उसको जच जाता है। द्रव्येंद्रिय भिन्न है, आत्मा से। आहाहा! वो जानने का साधन नहीं है। वो भिन्न

साधन है। भिन्न साधन, भेद साधन और अभेद साधन। भिन्न साधन, भेदरूप साधन और अभेदरूप साधन, साधन के तीन प्रकार हैं। वो तो भिन्न है, तो जानने का साधन द्रव्येंद्रिय (नहीं है)। आहाहा!

सर्वथा अपनेसे अलग किया; सो वह द्रव्येन्द्रियोंको जीतना हुआ। ये ज्ञेय के तीन विभाग हैं, द्रव्येंद्रिय, भावेन्द्रिय और भावेन्द्रिय का विषय, तीनों को इंद्रियाँ कहा। इंद्रिय, तीनों का नाम इंद्रियों अर्थात् तीनों ज्ञेय हैं। ज्ञेय यानि परज्ञेय हैं, आहाहा! स्वज्ञेय नहीं हैं। जाति आत्मा की नहीं है, तीनों में। तीनों में कोई जाति, लक्षण आत्मा का दिखाई देता नहीं है।

ऐसे उसका ४९वीं गाथा का थोड़ा आधार ले लेवें। अपने को थोड़ा टाइम है ना, टाइम है। थोड़ा टाइम अपने को ज़्यादा मिला एक दिन का, तो स्वाध्याय करें। उसमें क्या है? ४९ गाथा है। उसका मथाला (शीर्षक) है। **अब शिष्य पूछता है कि यह अध्यवसानादि भाव जीव नहीं हैं तो वह एक, टंकोत्कीर्ण, परमार्थस्वरूप जीव कैसा है?** प्रश्न है, शुद्धात्मा कैसा है और उसका लक्षण क्या है? दो प्रश्न आया। उसका लक्षण क्या है? इस प्रकार इस प्रश्न का उत्तर आचार्य भगवान फ़रमाते हैं।

जीव चेतनागुण, शब्द-रस-रूप-गन्ध-
व्यक्तिविहीन है ,
निर्दिष्ट नहिं संस्थान उसका, ग्रहण नहिं है।।
लिंगसे ४९।।

टीका:- जीव निश्चयसे पुद्गलद्रव्यसे अन्य है। पुद्गलद्रव्य है, एक जीवद्रव्य और एक पुद्गलद्रव्य। ये आत्मा है, वह पुद्गलद्रव्य से भिन्न है। कभी भिन्न होता (है)? सिद्ध होवे तब? अभी, तीनोंकाल, तीनोंकाल (भिन्न है)। आहाहा! पुद्गलद्रव्य से भिन्न है। भिन्न होगा ऐसा नहीं लिखा है, भिन्न है। **इसलिये उसमें रसगुण विद्यमान नहीं है।** रस नाम का जो गुण है, वो आत्मा में नहीं है। **अतः वह अरस है।१।** आत्मा चैतन्यरस तो है, मगर पुद्गल का रस, खट्टा-मीठा रस उसमें नहीं है।

पुद्गलद्रव्यके गुणोंसे भी भिन्न होनेसे स्वयं भी रसगुण नहीं है। पुद्गलद्रव्य से भिन्न और पुद्गलद्रव्य का रस नाम का गुण, उससे भी आत्मा भिन्न है। वो रस नाम का जो गुण है, वो पुद्गल में है, आत्मा में है नहीं, **इसलिये अरस है।२।** आहाहा! द्रव्य से भिन्नता, गुण से भिन्नता, पर्याय से भिन्नता। आहाहा! ये तो भेदज्ञान की बंसी बजती है। आहाहा! भेदज्ञान का मंत्र है। **परमार्थसे पुद्गलद्रव्यका स्वामित्व भी उसके नहीं है।** आत्मा ऐसा तू देख, जो इस पुद्गल का स्वामी कभी हुआ नहीं है। **इसलिये वह द्रव्येन्द्रियके आलम्बनसे भी रस नहीं चखता अतः अरस है।३।** ये जीभ का अवलंबन लेकर रस का ज्ञान करनेवाला आत्मा नहीं है, क्योंकि आत्मा अरस है। ये द्रव्येंद्रिय का स्वामी नहीं है। वो रस को जानने का ये साधन नहीं है। साधन माना तो एकता हो गई। आहाहा! जानने का साधन तो ज्ञान है। आहाहा! ये द्रव्येंद्रिय साधन नहीं है। आहाहा! जीभ साधन नहीं है। आहाहा! **इसलिए वह द्रव्येंद्रियके आलंबनसे भी रस नहीं चखता।** द्रव्येंद्रिय का आलंबन लेने की ज़रूरत आत्मा को नहीं है। रस का ज्ञान करने के लिए, तेरे को रस का, पुद्गल के रस का ज्ञान करना हो ना, तो आत्मा को जान। तो पुद्गल का, रस का, लोकालोक का ज्ञान भावश्रुत में अभी हो जाएगा। आहाहा! केवलज्ञान तो होगा तभी प्रत्यक्ष होगा, लेकिन अभी लोकालोक का ज्ञान भावश्रुत में आ जाता है। सब ज्ञेय उसमें (आ जाते हैं)। आहाहा! प्रतिभास होता है। आत्मा को जाना उसने सबको जाना।

नहीं चखता, इसलिए अरस है।४। अपने स्वभावकी दृष्टिसे देखा जाये तो, अभी वो दूसरा पॉइंट अभी इधर से भी लेंगे। भावेन्द्रिय जब आवे ना, तब वो लेना है। वो भावेन्द्रिय का बोल इसमें है और भावेन्द्रिय का बोल अभी इसमें आएगा। बाद में मिलान करेंगे। अभी द्रव्येंद्रिय का भेदज्ञान हुआ। ३१वीं गाथा के माध्यम से भेदज्ञान हुआ और ४९वीं गाथा के माध्यम से भी द्रव्येंद्रिय का भेदज्ञान आचार्य भगवान ने कराया।

अभी एक सूक्ष्म भावेन्द्रिय से भेदज्ञान (कराते हैं)। भेदज्ञान एक जुदा, वो थोड़ा सूक्ष्म है। द्रव्येंद्रिय से वो थोड़ा सूक्ष्म है क्योंकि द्रव्येंद्रिय तो मात्र बहिर्निमित्तभूत है। वो तो प्योर (pure) पुद्गल की रचना है। मगर अंदर में जो क्षयोपशमज्ञान है, क्षयोपशमज्ञान, वो जो द्रव्येंद्रिय का अवलंबन लेता है, तो भावेन्द्रिय बन जाती है और आत्मा का अवलंबन लेवे, तो अतींद्रिय बन जाए। दो ही क्षयोपशमज्ञान हैं। ज्ञान का दो भेद, क्षयोपशम और क्षायिक। मोह के चार भेद हैं। उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम। मगर ज्ञान का भेद या तो क्षयोपशम हो और या क्षायिक हो। और क्षयोपशमज्ञान के भी दो भेद, एक अतींद्रियज्ञान, क्षयोपशम और एक इंद्रियज्ञान भी क्षयोपशम। आहाहा! इससे अभी भावेन्द्रिय के साथ भेदज्ञान का प्रकरण आता है।

बाबूजी:- ज्ञान से ज्ञान का भेदज्ञान।

उत्तर:- ज्ञान से ज्ञान का भेदज्ञान। हमारे पिताजी ने एक दफ़े, हमारे, अपने मुमुक्षु को पत्र मैंने लिखा। तो मेरे पिताजी ने कहा कि मेरे ओर से लिखो कि भाई साहब! ज्ञान से ज्ञान जुदा है, ऐसा भेदज्ञान करो। तो मैंने कहा वो समझेगा नहीं। तो कहे नहीं समझेगा तो प्रश्न तो आएगा ना कि ज्ञान से ज्ञान के भेदज्ञान की बात क्या है? ज्ञान से राग का भेदज्ञान तो सुना। मगर ज्ञान से ज्ञान के भेदज्ञान की क्या बात है, (ऐसा) पत्र तो आएगा ना। आहाहा! पत्र नहीं आया। यानि समझ में आवे तो प्रश्न करे। नहीं समझे, समझने की दरकार नहीं है, वो भी प्रश्न नहीं करता है और समझ गया, वो भी प्रश्न नहीं करता है। आहाहा! समझने की जिज्ञासा है और समाधान नहीं हो, वो प्रश्न करता है। आहाहा!

अभी आचार्य भगवान..... आहाहा! शास्त्रज्ञान भैया! ज्ञान नहीं है। प्रभु! भूल गया तू। ये तेरा कपड़े का व्यापार का उघाड़ और ये हीरा के व्यापार का उघाड़, मधुभाई, वो आत्मा का ज्ञान नहीं है और यह दाल का जो व्यापार है, ये मूँग की दाल, ये चने की दाल है। समझे? इसका जो उघाड़ है ना, आहाहा! वो ज्ञान नहीं है, भैया! वो तो ज्ञान नहीं है, उसके साथ तो पाप का संबंध हो जाता है और शास्त्रज्ञान के साथ तो थोड़ा कषाय की मंदता, पुण्य भी (होता है)। तो भी वो ज्ञान नहीं है। वो तो पुण्य और पाप तो बाजु में रह जाता है। आहाहा! वो तो बाजु में पड़ोसी तरीके (से) रहता है। आहाहा! मगर जो शास्त्रज्ञान, इंद्रियज्ञान.... पाँच इंद्रिय का ज्ञान स्थूल है। मगर जो मानसिक ज्ञान है, वो सूक्ष्म है। मन, भाव-मन कहें ना, भाव-मन, वो सूक्ष्म है। ऐसे आँख से तो मूर्तिक पदार्थ दिखते हैं, वो तो स्थूल हैं। भावेन्द्रिय, खंडज्ञान, उसको जाना, तो उसको अपना मान लेता है। इंद्रियज्ञान का यह धर्म है। जिसको जाने, उसको अपना मान लेता है, अपनापन कर लेता है।

ऐसे, एक बंध अधिकार है, समयसार का। उसमें भाव-बंध की पराकाष्ठा की एक बात आई है। जैसे मैं पर को जिंदा रख सकूँ, सुखी-दुःखी कर सकता हूँ, वो तो भाव-बंध मिथ्यात्व-अध्यवसान है ही।

समझे? बचाने का भाव और मारने का भाव, हिंसा या अहिंसा दो ही, उसमें अपनापन करे तो, तो अध्यवसान है ही। मगर एक मन है इधर, भाव-मन, उसमें भगवान ने कहा हुआ छहद्रव्य, वो धर्मास्तिकाय को मैं जानता हूँ, अधर्मास्तिकाय को जानता हूँ, आकाश को मैं जानता हूँ। आहाहा! पाप हो गया, अध्यवसान हो गया, भाव-बंध हो गया, उसके साथ एकत्वबुद्धि हो गई क्योंकि भाव-मन (में) भेदज्ञान करने की शक्ति, उसमें नहीं है। एकत्व कर लेता है। भाव-मन जिसको जाने, चिंतवन करें, आहाहा! चौबीस तीर्थंकर का मैं स्मरण करता हूँ। आहाहा! क्या कहा? ठीक है! उस टाइम बाजु में शुभभाव, भक्ति का राग है। मगर अभी तो ये बात चलती है भाव-मन की, भाव-मन में परपदार्थ का चिंतवन किया तूने, तो वो भाव-मन उसके साथ एकत्व करता है, भाव-बंध हो जाता है, अध्यवसान हो जाता है।

बाबूजी:- ज्ञायक दिखाई नहीं देता।

उत्तर:- ज्ञायक दिखाई नहीं दिया, तिरोभूत हो गया, तो अन्य के साथ एकत्व करता ही है, भाव-मन। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, मगर समझने जैसी है। सूक्ष्म का अर्थ, नहीं समझ में आवे, ऐसा नहीं। समझने जैसी है, थोड़ा उपयोग लगाना। समझे?

गुरुदेव, कभी सूक्ष्म बात आती थी, तब ऐसा बोलते थे कि जितना समझ में आये उतना समझो, जितना समझ में आये उतना समझो, जितना समझ में आये उतना समझो। कि बात तो ये समझे बिना भव का अंत आनेवाला नहीं है। सूक्ष्म करके छोड़ देने जैसी चीज़ नहीं है। आत्मा ही सूक्ष्म है, तो उसको उपयोग भी सूक्ष्म करना पड़े। इंद्रियज्ञान स्थूल है, इन्द्रियज्ञान स्थूल है, स्थूल ज्ञान से आत्मा का अनुभव होता नहीं। अतींद्रियज्ञान सूक्ष्म है। उस सूक्ष्म ज्ञान से सूक्ष्म भगवान आत्मा का दर्शन होता है।

दूसरा पॉइंट आता है अभी भावेन्द्रिय का। **भिन्न-भिन्न अपने-अपने विषयोंमें**, इंद्रियज्ञान का विषय भिन्न-भिन्न होता है। जैसे स्पर्श इंद्रिय का विषय ठंडा-गर्म होता है, रस इंद्रिय का, भावेन्द्रिय की बात चलती है, उसका विषय खट्टा-मीठा। ये (चक्षु इन्द्रिय का विषय) सफ़ेद-काला। समझे? ऐसे सुगंध-दुर्गंध, ऐसे कर्कश आवाज़, मीठा आवाज़, ये सब पुद्गल की पर्याय। उसका जो भाव, भाव है, भावेन्द्रिय, उसका विषय, **भिन्न-भिन्न अपने-अपने विषयोंमें,** अपने-अपने विषयों में प्रवृत्ति करती है। इधर (स्पर्श इंद्रिय से) ठंडा लगता है मगर खट्टा-मीठा का स्वाद आता नहीं है। इसकी योग्यता है, योग्यता के साथ इतना ही संबंध रहता है। आहाहा! लिमिटेड (limited) है, भावेन्द्रिय। अतिंद्रीयज्ञान अनलिमिटेड (unlimited) है। पाँच इंद्रिय के विषयों को एक समय में जान लेता है। पाँच इंद्रिय के विषयों को एक समय में जान लेता है और इंद्रिय के सन्मुख नहीं करना पड़ता है। उस विषय के सन्मुख भी नहीं करता है उपयोग। उपयोग आत्मसन्मुख होता है, तो सब जानने में आ जाता है। अलौकिक चीज़ है।

भिन्न-भिन्न अपने-अपने विषयोंमें व्यापारभावसे, व्यापारभाव से देखो, व्यापार लिखा। समझे? जो इंद्रियज्ञान भावेन्द्रिय है ना, वो लब्धरूप उपयोग होता है। समझे? तो जब उपयोग होता है, उसका नाम व्यापार। दूसरी इंद्रियज्ञान का उघाड़ लब्धरूप होता है। एक इन्द्रिय का व्यापार होता है, तो दूसरी चार इंद्रिय का व्यापार लब्ध हो जाता है। आहाहा! अभाव नहीं होता है, अभाव (नहीं होता

है)। उसकी शक्ति रहती है जानने की। जानने का व्यापार बंद हो गया, पर जानने की शक्ति तो रहती है। क्षयोपशम तो इतना रहता है, जाता नहीं है।

अपने-अपने विषयोंमें व्यापारभावसे जो विषयोंको खंडखंड ग्रहण करती हैं। आहाहा! जो इंद्रियज्ञान है ना, एक-एक विषय को जानता है, तो ज्ञान ही खंड हो गया, अखंड नहीं रहा। जैसे ज्ञेय से ज्ञेयांतर, ज्ञेय से ज्ञेयांतर, बार-बार ऐसे घूमता है, इंद्रियज्ञान। आहाहा! इंद्रियज्ञान में स्थिरता नहीं आती है। उसका स्वभाव ही अस्थिर है, चंचल है। क्या कहा? इंद्रियज्ञान, भावेन्द्रिय का स्वभाव ही चंचल है। आहाहा! इधर बैठे और ये चलता है ३१ गाथा और कभी परदेश का व्यापार का विचार आ जावे, कभी कुटुंब का, कभी उघराणी का, कभी क्या, कभी क्या, ऐसा-ऐसा ये चंचल है इंद्रियज्ञान। आहाहा! अतींद्रियज्ञान तो स्थिर है, चंचलता उसमें नहीं है। भगवान आत्मा तो अचल है, स्थिर है, मगर उसके आश्रय से हुआ जो अतींद्रियज्ञान, सम्यग्ज्ञान, स्वसंवेदनज्ञान वो भी स्थिर है, क्योंकि उसका विषय स्थिर है। उसका विषय (स्थिर है) और भावेन्द्रिय का विषय अस्थिर है। भावेन्द्रिय का विषय (अस्थिर है)। तो अस्थिर के लक्ष्य से इधर भी अस्थिरता हो जाती है, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनता है। है अपनी योग्यता से, है तो अपनी स्वतंत्र योग्यता से। उधर फेरफार हुआ तो इसके कारण से (यहाँ) फेरफार होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

विषयोंको खण्डखण्ड ग्रहण करती हैं (ज्ञानको खण्डखण्डरूप बतलाती हैं)। ज्ञान को खंड-खंडरूप बतलाती है। इसका क्या अर्थ है? कि पहले इसको जाना, तो ये खंडज्ञान हो गया। बाद में इसको जाना, बाद में इसको जाना, तो ये ज्ञान-ज्ञेय खंड-खंडरूप अनेक है, ज्ञान-ज्ञेय अनेक है, तो अनेक के लक्ष्य से ज्ञान की पर्याय भी खंड-खंड होती है। आहाहा! ऐसे ज्ञान, ज्ञेय 'ज्ञान खंड-खंड है', ऐसी प्रसिद्धि करती है। (**ज्ञानको खण्डखण्डरूप बतलाती हैं)**, ज्ञेय के संबंध से। **ऐसी भावेन्द्रियोंको, प्रतीतिमें आनेवाली,** अभी प्रतीति का विषय आया, श्रद्धा का विषय आया। खंडज्ञान, जितने में श्रद्धा बलवान होती है। जब श्रद्धा बलवान होती है, अंदर में से, तब खंडज्ञान जीता जाता है। कैसे जीता जाए? कि मैं पर को जानता नहीं हूँ, ऐसा अंदर में से, अंदर में से श्रद्धा का बल आता है। पहले विकल्पात्मक बल आता है, व्यवहार श्रद्धा प्रगट होती है कि मैं पर को जाननेवाला (नहीं)। आहाहा! तो वो जो उपयोग बाहर घूमता था, वो वहाँ से व्यवृत्त हो जाता है। व्यावृत्त समझे? लौट जाता है।

ऐसा एक दफ़े ये शांतिभाई का लड़का है, तत्त्व का अभ्यासी, रुचिवाला, पंकज उसका नाम है। आहाहा! उसके साथ चर्चा हुई।